हंसराज बंगा

बनाम

रामचन्द्र अग्रवाल

29 अप्रैल 2005

[अशोक भान और ए.के. माथुर, जे. जे]

विस्थापित व्यक्ति (मुआवजा और पुनर्वास) अधिनियम, 1954 - धारा 14 और 29 - निष्क्रांत संपत्ति का प्रशासन अधिनियम, 1950 - धारा 2 (ए) - सरकार द्वारा बाजार का निर्माण और मुआवजा पूल का हिस्सा जिसे स्वामित्व के आधार पर विस्थापित व्यक्ति को हस्तांतरित किया जाना था -अतिक्रमणकारी विस्थापित व्यक्ति नहीं है, बाजार के निर्माण से पहले जमीन पर कब्जा कर रहा है और दुकान के हस्तांतरण की मांग कर रहा है- उच्च न्यायालय का आदेश है कि विभाग नीलामी द्वारा या निविदा आमंत्रित करके और दुकान के कब्जे वाले को अवसर देकर दुकान बेच सकता है - निविदाएं आमंत्रित की गई - अतिक्रमणकर्ता ने भाग नहीं लिया- क्रेता के पक्ष में बिक्री की पुष्टि- बिक्री की तारीख से साठ दिनों के भीतर कब्जाधारी द्वारा किराए का भुगतान न करना- कब्जे और हर्जाने के लिए मुकदमा संपत्ति का मालिक बनने के लिए -उसे धारण करने वाले क्रेता के पक्ष में कब्जे की डिक्री प्रदान करना -उच्च न्यायालय ने डिक्री-

ऑन अपील को रद्द कर दिया अपील में निर्धारित किया अतिक्रमणकर्ता ने निर्धारित अवधि के भीतर देय किराए का भुगतान नहीं किया अवैध कब्जा करने वाला और उसका उत्तराधिकारी भी क्रेता का किरायेदार नहीं है और अतिक्रमणकर्ता भी एक विस्थापित व्यक्ति नहीं है, जो अधिनियम की धारा 29 के तहत जारी अधिसूचना के अंतर्गत नहीं आता है, इसलिए बेदखली से सुरक्षा का हकदार नहीं है- इसके अलावा, निविदा आमंत्रित करके क्रेता के पक्ष में दुकान की बिक्री वैध है, संपत्ति एक निष्क्रांत संपत्ति थी और स्वामित्व और बिक्री की वैधता के मुद्दे के संबंध में पहले की कार्यवाही संपन्न हुई, क्योंकि ऐसे अधिभोगी ने बिक्री और स्वामित्व को चुनौती देते हुए रोक लगा दी थी - इसलिए, क्रेता संपत्ति का मालिक बन गया और विचारण न्यायालय द्वारा डिक्री के संदर्भ में कब्जे और क्षति का हकदार बन गया।

पुनर्वास मंत्रालय ने एक बाजार का निर्माण किया, सरकार ने संपत्ति का निर्माण किया और यह विस्थापित व्यक्ति (मुआवजा और पुनर्वास) अधिनियम, 1954 की धारा 14 के जी अर्थ के तहत मुआवजा पूल का हिस्सा बना, जिसे स्वामित्व के आधार पर विस्थापितों को हस्तांतरित किया जाना था। बी-कब्जाकर्ता, प्रतिवादी के पूर्ववर्ती-हित ने बाजार के निर्माण से पहले जमीन पर कब्जा कर लिया था और उसे वैकल्पिक

आवास के रूप में अस्थायी उपाय के रूप में दुकान की पेशकश की गई थी।

हालांकि किसी विस्थापित व्यक्ति ने दुकान को अपने पक्ष में हस्तांतरित करने की मांग नहीं की। उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए रिट याचिका का निपटारा कर दिया कि विभाग सार्वजनिक या निजी कार्रवाई या निविदाएं बुलाकर दुकान बेच सकता है और कब्जाधारी को अपनी बोली देने के लिए समान अवसर दिया जाएगा। विभाग ने दुकान की बिक्री के लिए निविदाएं आमंत्रित कीं। बी ने बिक्री में भाग नहीं लिया और अपीलकर्ता की निविदा उच्चतम होने के कारण स्वीकार कर ली गई और बिक्री उसके पक्ष में पक्की हो गई। बी की मृत्यु हो गई लेकिन न तो बी और न ही उसके उत्तराधिकारी या किसी विधिक उत्तराधिकारी ने बिक्री की स्थिति के अनुसार किरायेदारी की शुरुआत से अपीलकर्ता को किराया का भुगतान किया, क्योंकि इस तरह की मांग नोटिस जारी की गई थी।

अपीलकर्ता ने कब्जे और क्षति की वसूली के लिए मुकदमा दायर किया। इस बीच प्रतिवादी और बी के अन्य विधिक उत्तराधिकारियों ने अपीलकर्ता के पक्ष में बिक्री को रद्द करने के लिए याचिका दायर की क्योंकि उन्हें हाल ही में बिक्री के बारे में पता चला। पुनर्वास प्राधिकरण और उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता के पक्ष में दुकान की बिक्री और हस्तांतरण को बरकरार रखा। इस न्यायालय में अपील को वापस ले लिया

गया मानकर खारिज कर दिया गया और परिणामस्वरूप अपीलकर्ता के पक्ष में की गई बिक्री अंतिम हो गई। ट्रायल कोर्ट ने अपीलकर्ता के पक्ष में वादग्रस्त संपत्ति पर कब्जे के मुकदमे का फैसला सुनाया। हाई कोर्ट ने हाई कोर्ट के आदेश को रद्द कर दिया। यह माना गया कि निविदाएं आमंत्रित करके अपीलकर्ता के पक्ष में की गई बिक्री अमान्य थी; पहले की कार्यवाही में केवल बिक्री की वैधता का प्रश्न शामिल था जिसे अंतिम रूप दिया गया, न कि स्वामित्व का मुद्दा; कि संपत्ति निष्क्रांत संपत्ति नहीं थी; अधिनियम की धारा 29 मामले के तथ्यों पर लागू नहीं थी; और प्रतिवादी मुकदमे की संपत्ति का किरायेदार था। इसलिए वर्तमान अपील हैं।

कोर्ट ने अपील स्वीकार करते हुए अभिनिर्धारित किया:

1. उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता के पक्ष में मुकदमे की संपत्ति के कब्जे की डिक्री को रद्द करने में गलती की है और इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को रद्द कर दिया गया है और विचारण न्यायालय के निर्णय को बहाल किया गया है। [1009-डी]

2.1. प्रतिवादी के पूर्ववर्ती द्वारा दायर रिट याचिका में उच्च न्यायालय के आदेश को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि विभाग के पास वादग्रस्त संपत्ति को नीलामी, सार्वजनिक निजी, या निविदाएं बुलाकर बेचने का विकल्प था। विभाग ने निविदाएं आमंत्रित कर संपत्ति बेची। समाचार पत्रों में निविदाएं आमंत्रित करने के लिए एक विज्ञापन जारी किया गया था, जिसके जवाब

में अपीलकर्ता ने 'अपनी निविदा दाखिल की जो उच्चतम होने के कारण स्वीकार कर ली गई।' प्रतिवादी के पूर्ववर्ती हितधारक ने विज्ञापन के जवाब में कोई निविदा दाखिल नहीं की।

इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसार निविदाये आमंत्रित करके की गई बिक्री, ही वैध है और उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्ष कि संपत्ति केवल सार्वजनिक नीलामी के माध्यम से बेची जा सकती है, आदेश के अनुसार किसी अन्य तरीके से नहीं। तथ्यात्मक रूप से गलत होने से कायम नहीं रखा जा सकता। [1003-सी-ई]

2.2. अपीलकर्ता संपत्ति का मालिक बन गया, जिस क्षण संपत्ति ही उसके द्वारा पूरी कीमत का भुगतान किया गया और बिक्री की पुष्टि और बिक्री प्रमाण पत्र जारी होने के दिन से संपत्ति का शीर्षक उसे दे दिया गया। उच्च न्यायालय ने यह मानने में गलती की कि स्वामित्व का मुद्दा पुनर्वास अधिकारियों के समक्ष उत्तरदाताओं द्वारा शुरू की गई पिछली कार्यवाही में समाप्त नहीं हुआ था, न ही उच्च न्यायालय में रिट याचिका और इस न्यायालय में अपील में; और यह कि पिछली कार्यवाही में केवल बिक्री की वैधता का प्रश्न शामिल था, स्वामित्व का नहीं। और वह यह समझने में विफल रहा कि वैध बिक्री क्रेता को शीर्षक और स्वामित्व अधिकार दोनों प्रदान करती है। इस न्यायालय में बिक्री विलेख को चुनौती देने की अस्वीकृति के बाद, अपीलकर्ता विवाद में डी संपत्ति का मालिक बन गया

और यह नहीं कहा जा सकता है कि भले ही बिक्री को बरकरार रखा गया हो, अपीलकर्ता संपत्ति का मालिक नहीं बन गया। [1003-जी-एच]

बिशन पॉल बनाम. मोथु राम, एआईआर (1965) एससी 1994, संदर्भित।

2.3. उच्च न्यायालय ने यह न समझकर गलती की कि अपीलकर्ता के पक्ष में बिक्री की वैधता के संबंध में मामला पिछली कार्यवाही में पार्टियों के बीच तय किया गया था और निर्णय इस न्यायालय तक अंतिम रूप से पहुंच गया था। प्रतिवादी को वर्तमान मुकदमे में इस मुद्दे के खिलाफ फिर से प्रचार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि इस बिंदु पर निर्णय पहले ही अपीलकर्ता के पक्ष में दिया जा चुका था; प्रतिवादी को उसी आधार पर अपीलकर्ता और उसके स्वामित्व के पक्ष में की गई बिक्री को चुनौती देने से कानूनन रोक दिया गया था। [1005-सी-ई]

2.4. उच्च न्यायालय ने माना कि संपत्ति निष्क्रांत संपत्ति नहीं थी। इस निष्कर्ष पर पहुंचने का कोई कारण दर्ज नहीं किया गया। इस बिंदु पर मुकदमे में कोई मुद्दा नहीं बनाया गया था। संपूर्ण संपत्ति को निष्क्रांत संपत्ति के रूप में माना और निपटाया जा रहा था। पहले की कार्यवाही में प्रतिवादी और प्रतिवादी के पूर्ववर्ती द्वारा दायर रिट याचिका में विभाग ने संपत्ति को विस्थापित व्यक्तियों (मुआवजा और पुनर्वास) की धारा 14 के

अर्थ के भीतर 'मुआवजा पूल' का हिस्सा माना। अधिनियम, 1954। उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष कि संपत्ति निष्क्रांत संपत्ति नहीं थी, बिना किसी कारण के है जो भी हो, मुकदमेबाजी के पहले दौर में दर्ज किए गए रिकॉर्ड के विरुद्ध निष्कर्षों को अपास्त किया जाना चाहिए। [1004-जी-एच; 1005-ए-सीआई]

2.5. निष्क्रांत संपत्ति प्रशासन अधिनियम, 1950 की धारा 2(ए) में 'आवंटन' शब्द की परिभाषा के अनुसार संरक्षक का आवंटी संरक्षक का किरायेदार नहीं है। वह पट्टेदार नहीं है बल्कि विभाग का लाइसेंसधारी मात्र है। विस्थापित व्यक्ति (मुआवजा और पुनर्वास) अधिनियम के तहत संपत्ति के नीलामी या अन्यथा, निपटान पर, अभिरक्षक या परिसर का अधिभोगकर्त्ता हस्तांतरिती का किरायेदार बन जाता है। अधिनियम की धारा 29 के तहत, एक डीमिंग प्रावधान पेश किया गया है जिसके तहत ऐसा आवंटी उस अंतरिती का किरायेदार बन जाता है जो हस्तांतरण से ठीक पहले उसके पास था। यह प्रश्न कि कोई आवंटी किरायेदार बनता है या नहीं, यह इस प्रश्न पर निर्भर करेगा कि क्या यह अधिनियम की धारा 29 के दायरे में आता है। धारा 29 को धारा 29 के खंड (2) के तहत अधिसूचित किए जाने वाले व्यक्तियों के वर्ग या संपत्ति के वर्ग को बेदखल करने से सुरक्षा देने के लिए अधिनियमित किया गया है। [1005-ई-एच; 1006-ए]

2.6. प्रतिवादी के हित में पूर्ववर्ती ने माना कि वह विस्थापित व्यक्ति नहीं था और इसलिए, अधिसूचना की श्रेणी 3 और 4 के तहत कवर नहीं किया गया था। वह श्रेणी 1 और 2 के अंतर्गत भी नहीं आता था क्योंकि माना जाता है कि उसने स्थानांतरण के 60 दिनों के भीतर बकाया किराए का भुगतान नहीं किया था। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि विभाग ने संपत्ति के हस्तांतरण के बहुत बाद उत्तरदाताओं को किरायेदारी की शुरुआत से अपीलकर्ता के पक्ष में इसकी बिक्री तक किराए की बकाया राशि का भुगतान करने के लिए मांग नोटिस जारी किया था। प्रतिवादी द्वारा यह दावा कि उसे संपत्ति की बिक्री के लिए निविदाएं आमंत्रित करने वाले विज्ञापन के बारे में पता नहीं चला या उसे अपीलकर्ता के पक्ष में संपत्ति की बिक्री के बारे में पता नहीं चला, स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस तथ्य की जानकारी उनके लिए व्यक्तिगत होगी और यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि उन्हें अपीलकर्ता के पक्ष में मुकदमे की संपत्ति की बिक्री के बारे में पता नहीं चला। भुगतान, बिक्री की तारीख से 60 दिनों के भीतर किया जाना आवश्यक था और चूंकि बी ने शर्त पूरी नहीं की, इसलिए वह अपीलकर्ता का किरायेदार नहीं बन गया। प्रतिवादी, बी का उत्तराधिकारी होने के नाते, बी के पास जो कुछ भी होगा उसे अर्जित/विरासत में प्राप्त करेगा चूंकि बी अपीलकर्ता का किरायेदार नहीं बन गया, इसलिए प्रतिवादी, बी का हित उत्तराधिकारी होने के नाते, अपीलकर्ता का किरायेदार भी नहीं बन जाएगा। [1008-एच; 1009-ए-सी]

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 642/ 2003

दिल्ली उच्च न्यायालय के आर.एफ.ए. की संख्या 250/1982 निर्णय और आदेश दिनांक 22.3.2002 से।

रंजीत कुमार एवं एस.के. अपीलकर्ता की ओर से बग्गा, सीरज बग्गा, ए.पी. मायी, संजीव के. चौधरी और श्रीमती सुरेष्टा बग्गा उनके साथ थे।

बी.पी. अग्रवाल, ओमप्रकाश मिश्रा, बी.एम. अग्रवाल और घनश्याम वशिष्ठ उत्तरदाता के लिए

न्यायालय का निर्णय भान, जे. द्वारा सुनाया गया।

यह अपील दिल्ली उच्च न्यायालय, नई दिल्ली द्वारा 1982 की नियमित प्रथम अपील संख्या 280 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 22.03.2002 के खिलाफ दायर की गई है। उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा अपील की अनुमति दी और वादी-अपीलकर्ता के पक्ष में विचारण न्यायालय द्वारा पारित वाद की संपत्ति के कब्जे और क्षति के फैसले और डिक्री को रद्द कर दिया।

तथ्य

विवादित परिसर एक निष्क्रांत संपत्ति है यानी दुकान नंबर 114, न्यू कुतुब मार्केट, नई दिल्ली, विस्थापित व्यक्ति (मुआवजा और पुनर्वास)

नियम, 1955 के नियम 2 (डी) के संदर्भ में एक सरकार निर्मित संपत्ति है और इसका हिस्सा है। विस्थापित व्यक्ति (मुआवजा और पुनर्वास) अधिनियम, 1954 (संक्षेप में "अधिनियम") की धारा 14 के अर्थ के अंतर्गत मुआवजा पूल और प्रतिवादी-प्रतिवादी के पिता और पूर्व-हित

भगवान दास, जो विस्थापित व्यक्ति नहीं थे, ने सी.डब्ल्यू.पी. दायर किया। दिल्ली में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की सर्किट बेंच में 1958 के नंबर 458-डी में दुकान नंबर 114 को अपने पक्ष में स्थानांतरित करने की मांग की गई, इस आधार पर कि उसे विभाग द्वारा 10.05.1956 से आवंटित किया गया था और उसके पास है। नियमित रूप से इसके लिए किराया चुका रहा है और उसने प्रार्थना की कि इसे किसी अन्य व्यक्ति को सार्वजनिक नीलामी में बेचने के बजाय उसके पक्ष में स्थानांतरित कर दिया जाए। श्री एम.एस. चड्ढा, निपटान आयुक्त, पुनर्वास मंत्रालय ने विभाग की ओर से जवाबी हलफनामा दायर किया और यह रुख अपनाया कि कुतुब मार्केट का निर्माण पुनर्वास मंत्रालय द्वारा किया गया था और उसी अधिनियम की धारा 14 के अर्थ के तहत मुआवजा पूल का हिस्सा बनता है जिसे केवल विस्थापित व्यक्तियों को स्वामित्व के आधार पर हस्तांतरित किया जाना है। यह भी कहा गया था कि इन दुकानों को वैकल्पिक आवास के रूप में अतिक्रमणकारियों (भगवान दास, प्रतिवादी के पूर्ववर्ती-हित) के लिए एक अस्थायी उपाय के रूप में पेश किया गया था क्योंकि वे बाजार

के निर्माण से पहले जमीन पर कब्जा कर रहे थे, लेकिन उसे श्री भगवाद दास को या कब्जे करने वाले को जो विस्थापित व्यक्ति नहीं था को बेचा नहीं जा सकता था इसी प्रकार, कुछ अन्य व्यक्तियों ने भी रिट याचिकाएँ दायर की थीं। सी.डब्ल्यू.पी. 1958 के क्रमांक 438-डी और अन्य संबंधित मामलों का निपटारा दिनांक 21.09.1960 के एक आदेश द्वारा किया गया था जिसमें विभाग द्वारा यह सहमति व्यक्त की गई थी कि यदि विभाग संबंधित दुकान को चाहे वह सार्वजनिक हो या निजी, नीलाम द्वारा या निविदा कॉल करके बेचने का निर्णय लेता हैं तो दुकान के अधिभोगी को भी, जैसा भी मामला हो, अपनी बोली या निविदा देने के लिए समान अवसर दिया जाएगा, और अधिभोगी की बोली या निविदा पर अन्य बोलीदाताओं या निविदाकर्ताओं, यदि कोई हो, के साथ गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाएगा।

दिनांक 28.12.1960 को समाचार पत्रों में एक विज्ञापन जारी कर विभिन्न बाजारों में स्थित विभिन्न दुकानों की बिक्री हेतु निविदाएं आमंत्रित की गयीं। अपीलार्थी ने ड्राफ्ट क्रमांक 03260/2 दिनांक 4.1.1961 के साथ अपनी निविदा रु. 5% बयाना राशि के लिए यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, करोल बाग, नई दिल्ली से 350 रुपये निकाले गए। अपीलकर्ता की निविदा उच्चतम होने के कारण स्वीकार कर ली गई और शेष कीमत अधिनियम की धारा 8 के अनुसार अपीलकर्ता के सत्यापित दावे के विरुद्ध समायोजित

कर दी गई। भगवान दास ने सी.डब्ल्यू.पी. में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 21.09.1960 के परिणामस्वरूप आयोजित बिक्री कार्यवाही में भाग नहीं लिया। 1958 की संख्या 438-डी। बिक्री प्रमाणपत्र जो दुकान संख्या 114, न्यू कुतुब रोड मार्केट, नई दिल्ली के संबंध में अपीलकर्ता के पक्ष में जारी किया गया था कि नियमों के तहत विधिवत पुष्टि की गई, लीज डीड भी 17.10.1963 को जारी की गई थी और इसे 22.02.1964 को उप पंजीयक द्वारा पंजीकृत किया गया था। रजिस्ट्रार. लीज डीड ने गलती से संपत्ति का उल्लेख 114, न्यू कुतुब रोड के बजाय 114, न्यू राजिंदर नगर के रूप में कर दिया, जिसे एक पूरक लीज डीड दिनांक 28.02.1967 द्वारा सही किया गया था। पूरक पट्टा विलेख में यह उल्लेख किया गया था कि अपीलकर्ता को बेचा गया क्षेत्र दुकान नंबर 114, न्यू कुतुब रोड था, न कि 114, न्यू राजिंदर नगर, जिसका उल्लेख 22.02.1964 को पंजीकृत पट्टे में किया गया था। विज्ञापन के अनुसार बिक्री की शर्तों में से एक यह थी कि यदि कोई संपत्ति आवंटियों या अनधिकृत कब्जेदारों के कब्जे में है तो खरीदार किरायेदारों से किराया प्राप्त करने का हकदार होगा।

वर्ष 1962 में भगवान दास की मृत्यु हो गई। चूंकि न तो प्रतिवादी के पूर्ववर्ती भगवान दास और न ही प्रतिवादी या भगवान दास के किसी अन्य विधिक उत्तराधिकारी ने किरायेदारी की शुरुआत से कोई किराया भुगतान किया था, इसलिए अधिनियम की धारा 21 के तहत प्रतिवादी को

8.8.1955 से 27.02.1961 की अवधि के लिए किराए की वसूली के लिए, यानी अपीलकर्ता को दुकान की बिक्री की तारीख तक की अवधि के लिये मांग नोटिस जारी किया गया।

अपीलकर्ता ने 26 जुलाई, 1973 को प्रतिवादी के खिलाफ दुकान नंबर 114, न्यू कुतुब रोड पर कब्जे और संपत्ति के अनधिकृत उपयोग और कब्जे के लिए नुकसान की वसूली के लिए मुकदमा दायर किया। 3 मई, 1978 को लिखित बयान, जिसे बाद में 31 अक्टूबर, 1981 को संशोधित किया गया और इस आधार पर मुकदमे का विरोध किया गया कि अपीलकर्ता संपत्ति का मालिक नहीं था, क्योंकि इसे अपीलकर्ता को हस्तांतरित नहीं किया जा सकता था। संयुक्त हिंदू फर्म मैसर्स. भीमा मल दीना नाथ जिसके वे सदस्य थे, एक्सटेंशन के आधार पर 8.8.1955 से परिसर में किरायेदार थे। डी-1 आवंटन पत्र और डी-3 किरायेदारी की शर्तें थी। उनकी ओर से दलील दी गई कि दुकान का किराया 19.80 रुपये था. मांग के अनुसार 40 प्रति माह नहीं। विकल्प में, यह दलील दी गई कि वह रुपये की राशि को समायोजित करने का हकदार है। उन्होंने हाउस टैक्स के रूप में 4,186.83 रुपये का भुगतान किया।

मुकदमा दायर होने के बाद श्री बी.पी. अग्रवाल प्रतिवादी के भाई और स्वर्गीय भगवान सिंह के कानूनी उत्तराधिकारी अग्रवाल ने दुकान नंबर 114 के संबंध में भगवान दास की किरायेदारी से संबंधित दस्तावेजों की आपूर्ति

के लिए क्षेत्रीय निपटान आयुक्त के समक्ष एक आवेदन दायर किया। 23 फरवरी, 1978 को एक याचिका दायर की गई। अधिनियम की धारा 24 के तहत भगवान दास के अन्य कानूनी उत्तराधिकारियों के साथ प्रतिवादी द्वारा अपीलकर्ता के पक्ष में की गई बिक्री को रद्द करने की मांग करते हुए भगवान दास के विधिक प्रतिनिधियों के पक्ष में नए सिरे से बिक्री की परिणामी राहत की मांग की गई थी। यह आरोप लगाया गया था कि प्रतिवादी को अपीलकर्ता के पक्ष में बिक्री के बारे में पहली बार 17 फरवरी, 1978 को पता चला था। इस याचिका को उप मुख्य निपटान आयुक्त ने 5.7.1978 को मुख्य निपटान आयुक्त की शक्तियों का प्रयोग करते हुए खारिज कर दिया था। अपीलकर्ता के पक्ष में दुकान की बिक्री और हस्तांतरण को बरकरार रखा। इस आदेश से व्यथित होकर, प्रतिवादी ने धारा 33 के तहत केंद्र सरकार के समक्ष एक पुनरीक्षण याचिका दायर की, जिसे 25 नवंबर, 1978 को खारिज कर दिया गया। इन आदेशों के पारित होने से व्यथित होकर, प्रतिवादी ने भगवान दास के अन्य उत्तराधिकारियों के साथ सीडब्ल्यूपी संख्या 396/1979 दायर की। 1979 में दिल्ली उच्च न्यायालय में अपीलकर्ता के पक्ष में किए गए आदेश और बिक्री को रद्द करने की मांग की गई, जिसके परिणामस्वरूप बिक्री के संबंध में उनके पक्ष में नए सिरे से परिणामी राहत मिले। उच्च न्यायालय ने 9.4.1979 को रिट याचिका खारिज कर दी, जिससे व्यथित होकर प्रतिवादी ने एसएलपी (सी) संख्या 10765/1979 दायर की जिसे अनुमति दी गई और इसे

सिविल अपील संख्या 615/1982 के रूप में पंजीकृत किया गया। प्रतिवादी के सी.ए. संख्या 615/1982 को वापस ले लिया गया मानकर खारिज कर दिया गया और इसके परिणामस्वरूप अपीलकर्ता के पक्ष में की गई बिक्री और अधिकारियों और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों ने अपीलकर्ता के पक्ष में की गई बिक्री के लिए प्रत्यर्थी की चुनौती को खारिज कर दिया।

इन कार्यवाहियों के समापन के बाद, 26 जुलाई, 1973 को अपीलकर्ता द्वारा दायर मुकदमे में विचारण न्यायालय ने, जिसे मुकदमा संख्या 781/1976 के रूप में पुनः क्रमांकित किया गया था, निम्नलिखित मुद्दों/अतिरिक्त मुद्दों को तय किया: -

"1. क्या वादी मुकदमे की संपत्ति का मालिक है?

2. क्या न्यायालय शुल्क के प्रयोजनों के लिए मुकदमे का उचित मूल्यांकन किया गया हैँ। यदि नहीं, तो उचित मूल्यांकन क्या है?

3. क्या वादी किसी क्षतिपूर्ति का हकदार है? यदि नहीं, तो किस दर पर; किस अवधि के लिए और कितनी राशि के लिए?

4. क्या मैसर्स भीमा मल दीना नाथ के प्रतिवादी कथित संयुक्त हिंदू परिवार, वाद परिसर का किरायेदार है जैसा कि

लिखित बयान में आरोप लगाया गया है, यदि हां, तो इसका क्या प्रभाव है?

5. क्या मुकदमा कालातीत है?.

6. क्या सिविल कोर्ट को मुकदमे पर विचार करने और मुकदमा तय करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है?

7. अनुतोष

अतिरिक्त मुद्दे

1. क्या पुनर्वास मंत्रालय द्वारा वादी के पक्ष में विवादित संपत्ति की बिक्री शून्य है जैसा कि संशोधित लिखित बयान में प्रतिवादियों ने आरोप लगाया है? ओपीडी.

2. क्या किसी सिविल न्यायालय को वैधता में जाने का या अन्यथा बिक्री का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है?

3. क्या भारत संघ एक आवश्यक पक्ष है? यदि हां, तो क्या है इसमें सम्मिलित न होने का असर?"

ट्रायल कोर्ट ने सभी मुद्दों पर अपीलकर्ता के पक्ष में फैसला सुनाया। अपीलकर्ता को वाद की संपत्ति का मालिक माना गया। मुकदमे को अदालती शुल्क और क्षेत्राधिकार के उद्देश्य से मूल्यवान संपत्ति माना गया। विवाद्यक

संख्या 3 के संबंध में, यह माना गया कि अपीलकर्ता 3600 रूपये हर्जाने का हकदार था। विवाद्यक संख्या 4 के तहत यह माना गया कि मै. भीम मल दीना नाथ, कथित संयुक्त हिंदू परिवार मुकदमे के परिसर का किरायेदार नहीं था और विवाद्यक संख्या 5 में, यह माना गया था कि मुकदमा परिसीमा के भीतर था। विवाद्यक संख्या 6 के संबंध में, यह माना गया कि सिविल न्यायालय को मुकदमे पर विचार करने और निर्णय लेने का अधिकार है। अतिरिक्त मुद्दे 1 और 2 को प्रतिवादी द्वारा प्रेस नहीं किया गया। ट्रायल कोर्ट इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि किरायेदारी स्थापित करने के लिए उत्तरदाताओं द्वारा जिन दस्तावेजों पर भरोसा किया गया था, उनमें हेरफेर किया गया था और यहां तक कि इन दस्तावेजों के अनुसार यह स्थापित किया गया था कि उत्तरदाताओं और उनके पूर्ववर्तियों ने किरायेदारी की शुरुआत से कभी भी कोई किराया नहीं दिया था जिसके परिणामस्वरूप, एक मांग नोटिस प्रतिवादी को 8.8.1955 से 27.7.1961 की अवधि के लिए यानी अपीलकर्ता को वाद संपत्ति की बिक्री की तारीख तक। बकाया किराये के लिए डी-6 जारी किया गया चूंकि प्रतिवादी सहमत किराए का भुगतान करने में विफल रहा, इसलिए उसके पक्ष में बनाई गई किरायेदारी समाप्त हो गई। ट्रायल कोर्ट भी इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि प्रतिवादी अधिनियम की धारा 29 के लाभ का हकदार नहीं है। यह माना गया कि चूंकि मकान मालिक और किरायेदार का कोई संबंध नहीं था, इसलिए सिविल मुकदमा कायम रखने योग्य था। दर्ज किए गए निष्कर्षों के मद्देनजर, विचारण

न्यायालय ने मुकदमे का फैसला सुनाया और अपीलकर्ता को मुकदमे की संपत्ति पर कब्जा करने और 3600 रुपये की क्षति की डिक्री दी गई। प्रतिवादी द्वारा वाद संपत्ति के अनधिकृत उपयोग और कब्जे के लिए।

कोर्ट द्वारा पारित फैसले और डिक्री के खिलाफ व्यथित होकर, प्रतिवादी ने नई दिल्ली में दिल्ली उच्च न्यायालय में नियमित प्रथम अपील दायर की, जिसे आरएफए नंबर 250/1982 के रूप में क्रमांकित किया गया था। उच्च न्यायालय ने अपील स्वीकार कर ली और ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को रद्द कर दिया। यह निष्कर्ष निकला कि भगवान दास द्वारा दायर सीडब्ल्यूपी संख्या 438-डी/1958 में हुए समझौते के अनुसार, विभाग संपत्ति को केवल सार्वजनिक नीलामी के माध्यम से बेच सकता है, किसी अन्य तरीके से नहीं। चूंकि वर्तमान मामले में, बिक्री निविदाएं आमंत्रित करके अपीलकर्ता के पक्ष में की गई थी, इसलिए यह वैध नहीं थी। उच्च न्यायालय ने आगे कहा कि ट्रायल कोर्ट ने 'पीएक्स' और 'पीवाई' के रूप में चिह्नित अप्रदर्शित दस्तावेजों को अनुचित महत्व देकर गलती की। वह एक्सटेंशन 'पीएक्स' दुकान नंबर 114, न्यू राजिंदर नगर से संबंधित है, न कि न्यू कुतुब रोड में दुकान से। शुद्धिपत्र की प्रकृति में निष्पादित पूरक पट्टा विलेख, जिसमें 114, न्यू राजिंदर नगर के स्थान पर "114, न्यू कुतुब रोड" शब्द शामिल थे, को खारिज कर दिया गया क्योंकि ये दस्तावेज़ श्री एस.बी. लाल को प्रस्तुत नहीं किए गए थे। जब वे

गवाह बाॅक्स में पीडब्लू 4, पुनर्वास विभाग के कार्यालय का एक क्लर्क और डीडब्ल्यू 6 पेश हुए। उच्च न्यायालय भी इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि संपत्ति एक निष्क्रांत संपत्ति नहीं थी। आगे यह माना गया कि धारा 29 अधिनियम वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं था और प्रतिवादी मुकदमे की संपत्ति का किरायेदार था।

उभय पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को विस्तार से सुना गया। उनकी मदद से हमने उच्च न्यायालय के साथ-साथ विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों और रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों का अध्ययन किया है।

उच्च न्यायालय ने यह मानकर गलती की है कि भगवान दास द्वारा दायर रिट याचिका संख्या 438-डी/1958 में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के अनुसार, संपत्ति केवल सार्वजनिक नीलामी के माध्यम से बेची जा सकती है, किसी अन्य तरीके से नहीं। 21 सितंबर, 1960 को उच्च न्यायालय द्वारा रियायत पर पुनर्वास विभाग ने 1958 के सीडब्ल्यूपी 438-डी में निम्नलिखित शर्तों में आदेश पारित किया:-

> ए "इस मामले में याचिकाकर्ता और उत्तरदाताओं के बीच एक समझौता हुआ है कि यदि सरकार दुकान को नीलामी, चाहे वह सार्वजनिक हो या निजी, या निविदाएं बुलाकर बेचने का निर्णय लेती है, तो अपनी बोली या निविदा देने के लिए याचिकाकर्ता को भी समान अवसर दिया जाएगा और

याचिकाकर्ता की बोली या निविदा पर जैसा भी मामला हो, अन्य बोलीदाताओं या निविदाकर्ताओं, यदि कोई हो, के साथ गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाएगा।"

आदेश को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि विभाग के पास वाद संपत्ति को नीलामी, सार्वजनिक या निजी, या निविदाएं बुलाकर बेचने का विकल्प था। वर्तमान मामले में, विभाग ने निविदाएं आमंत्रित करके संपत्ति बेच दी। समाचार पत्रों में निविदाएं आमंत्रित करने के लिए एक विज्ञापन जारी किया गया था, जिसके जवाब में अपीलकर्ता ने अपनी निविदा दायर की जो उच्चतम होने के कारण स्वीकार कर ली गई। विज्ञापन के जवाब में भगवान दास ने टेंडर दाखिल नहीं किया. उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्ष तथ्यात्मक रूप से गलत है। उच्च न्यायालय ने यह मानने में गलती की है कि सीडब्ल्यूपी संख्या 438-डी/1958 में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का उल्लंघन करके की गई बिक्री कानूनी रूप से खराब थी। विभाग के पास संपत्ति को नीलामी, सार्वजनिक या निजी या निविदाएं बुलाकर बेचने का विकल्प था। दोनों में से किसी एक तरीके को चुनने का अधिकार विभाग पर छोड़ दिया गया और विभाग ने उच्च न्यायालय को दिए गए वचन के अनुसार निविदाएं आमंत्रित करके संपत्ति बेच दी। बिक्री निविदाएं आमंत्रित करके उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसार की गई है, जो वैध है

और इसके विपरीत उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष को तथ्यात्मक रूप से गलत नहीं ठहराया जा सकता है।

अपीलकर्ता द्वारा दी गई निविदा के माध्यम से बोली उच्चतम होने के कारण स्वीकार कर ली गई। उन्होंने बिक्री का पूरा भुगतान कर दिया। उनके पक्ष में बिक्री की पुष्टि की गई और बिक्री प्रमाणपत्र जारी किया गया। चूंकि संपत्ति लीजहोल्ड आधार पर बेची गई थी, लीज डीड 17 अक्टूबर, 1963 को निष्पादित की गई थी, जिसे 22 फरवरी, 1964 को पंजीकृत किया गया था। अपीलकर्ता संपत्ति का मालिक बन गया, जिस क्षण संपत्ति की पूरी कीमत का भुगतान किया गया और उसका शीर्षक बिक्री की पुष्टि और बिक्री प्रमाण पत्र जारी होने के दिन से संपत्ति उसके पास चली गई। हमारे विचार में, उच्च न्यायालय ने यह मानने में गलती की कि स्वामित्व का मुद्दा पुनर्वास अधिकारियों के समक्ष उत्तरदाताओं द्वारा शुरू की गई पिछली कार्यवाही, उच्च न्यायालय में रिट याचिका और इस न्यायालय में अपील में समाप्त नहीं हुआ था। यह मानने में भी गलती हुई कि इसमें केवल बिक्री की वैधता का प्रश्न शामिल था पहले की कार्यवाही और स्वामित्व का नहीं। यह समझने में विफल रहा कि वैध बिक्री क्रेता को शीर्षक और स्वामित्व अधिकार दोनों प्रदान करती है। इस न्यायालय में बिक्री विलेख को चुनौती देने की अस्वीकृति के बाद, अपीलकर्ता विवाद में संपत्ति का मालिक बन गया और यह नहीं कहा जा सकता है कि भले ही

बिक्री को बरकरार रखा गया हो, अपीलकर्ता संपत्ति का मालिक नहीं बन गया। उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण बिशन पॉल बनाम मोथु राम, एआईआर (1965) एससी 1994 में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के खिलाफ है और न्यायशास्त्र के मूल सिद्धांत के भी खिलाफ है क्योंकि यह एक स्थापित तथ्य है कि एक वैध बिक्री की पुष्टि की जाती है। प्राधिकरण क्रेता को शीर्षक के साथ-साथ स्वामित्व अधिकार भी प्रदान करता है। संपत्ति की वैध बिक्री और स्वामित्व अविभाज्य हैं और जिस क्षण कीमत का भुगतान किया जाता है और बिक्री की पुष्टि हो जाती है, क्रेता मालिक बन जाता है, बिशन पॉल के मामले में (सुप्रा), यह निर्धारित किया गया था:-

> "हमें ऐसा लगता है कि इस मामले पर सामान्य सिद्धांतों पर विचार किया जाना चाहिए। इस मामले में सबसे ऊंची बोली प्रतिवादी की थी और उसने अपने पक्ष में बिक्री की पुष्टि होने से पहले पूरी कीमत का भुगतान कर दिया था। बिक्री प्रमाण पत्र जिसमें उसके पक्ष में बिक्री की पुष्टि की तारीख थी। हालांकि बाद में जारी किया गया था, किरायेदार को बिक्री की पुष्टि की तारीख से खरीददार को वकील करने के लिए कहा गया था और इस प्रकार उस दिन कब्ज़ा भी दे दिया गया था। इसलिए, प्रमाण पत्र जारी होने तक

स्वामित्व स्थगित नहीं था लेकिन बिक्री की पुष्टि पर पारित कर दिया गया। नियमों के पीछे का इरादा यह प्रतीत होता है कि शीर्षक तब पारित होगा जब पूरी कीमत वसूल हो जाएगी और यह अब जैलमल के मामले में पुनरुत्पादित प्रमाण पत्र के नए रूप से स्पष्ट है, 66 पन एलआर 99: एआईआर (1964) पुंज 99/ इसमें कोई शक नहीं कि जब तक कीमत पूरी नहीं चुका दी जाती तब तक संपत्ति पर कोई दावा नहीं किया जा सकता, लेकिन यह थोड़ा अजीब लगता है कि जिस व्यक्ति ने कीमत पूरी चुका दी है और जिसके पक्ष में बिक्री भी पक्की है और जिसके कब्जे में संपत्ति को रखा गया है को संपत्ति का स्वामित्व केवल उसी तारीख से प्राप्त करना चाहिए जिस दिन उसे प्रमाणपत्र जारी किया जाता है। प्रमाणपत्र प्रदान करने से पहले संभवतः काफी समय व्यतीत हो सकता है। इस मामले में किरायेदार को 3 अक्टूबर, 1956 से अटॉर्न देने के लिए कहा गया क्योंकि प्रमाणपत्र जारी करने और इसे पंजीकृत कराने के मंत्रिस्तरीय कार्यों के अलावा कुछ भी नहीं किया जाना बाकी था। इसलिए, जहां तक स्वामित्व का सवाल है, इसे पारित माना जाना चाहिए और प्रमाणपत्र उस तारीख से संबंधित होना चाहिए जब बिक्री पूर्ण हो गई थी।"

उच्च न्यायालय ने यह मानने में भी गलती की कि संपत्ति निष्क्रांत संपत्ति नहीं थी। उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष को एक पंक्ति में दर्ज करते हुए कहा, "यह एक निष्क्रांत संपत्ति नहीं थी"। इस निष्कर्ष पर पहुंचने का कोई कारण दर्ज नहीं किया गया है। इस बिंदु पर मुकदमे में कोई विवाद्यक नहीं बनाया गया था। संपत्ति संपूर्ण रूप से निष्क्रांत संपत्ति के रूप में व्यवहार किया जा रहा है और निपटाया जा रहा है। प्रतिवादी ने पिछली कार्यवाही में यह रुख नहीं अपनाया था कि संपत्ति निष्क्रांत संपत्ति नहीं थी, इसके विपरीत उसने संपत्ति को "मुआवजा पूल" का हिस्सा माना था जो इस तथ्य से स्पष्ट है कि प्रतिवादी ने संपत्ति को निष्क्रांत संपत्ति मानकर संशोधन याचिका दायर की थी अधिनियम की धारा 24 और 33 प्रतिवादी के पूर्ववर्ती भगवान दास द्वारा दायर सीडब्ल्यूपी संख्या 458-डी/1958 में विभाग ने कड़ा रुख अपनाया था कि संपत्ति विस्थापित व्यक्तियों की धारा 14 के अर्थ के तहत "मुआवजा पूल" का हिस्सा बनती है। (मुआवजा और पुनर्वास) अधिनियम, 1954 उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष मुकदमे के पहले दौर में दर्ज किए गए रिकॉर्ड और निष्कर्षों के विपरीत, किसी भी कारण से रहित है व अलग रखे जाने योग्य है।

उच्च न्यायालय ने यह न समझकर गलती की कि अपीलकर्ता के पक्ष में बिक्री की वैधता के संबंध में मामला पिछली कार्यवाही में पार्टियों के बीच तय किया गया था और निर्णय इस न्यायालय तक अंतिम रूप से

पहुंच गया था। प्रतिवादी को वर्तमान मुकदमे में इस मुद्दे के खिलाफ फिर से प्रचार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। वर्तमान मामले में प्रतिवादी के स्वामित्व को चुनौती का आधार वही है जो उसके द्वारा अधिनियम की धारा 24 और 33 के तहत पिछली कार्यवाही और इस न्यायालय में रिट याचिका और अपील में लिया गया था। चूँकि इस मुद्दे पर अपीलकर्ता के पक्ष में निर्णय पहले ही दिया जा चुका था, इसलिए प्रतिवादी को वर्तमान मामले में उसी आधार पर अपीलकर्ता और उसके स्वामित्व के पक्ष में की गई बिक्री को चुनौती देने से रोक दिया गया था।

कस्टोडियन का आवंटी कस्टोडियन का किरायेदार नहीं है। यह निष्क्रमण संपत्ति प्रशासन अधिनियम, 1950 की धारा 2(ए) में "आवंटन" शब्द की परिभाषा से स्पष्ट है। यह परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में है:

> "एस.2(ए): "आवंटन" का अर्थ है किसी अन्य व्यक्ति को किसी अचल निष्क्रांत संपत्ति के कब्जे के उपयोग के अधिकार के लिए विधिवत अधिकृत व्यक्ति द्वारा अनुदान, लेकिन इसमें पट्टे के माध्यम से अनुदान शामिल नहीं है;"

इस परिभाषा से स्पष्ट है कि आवंटी पट्टाधारी नहीं है बल्कि विभाग का लाइसेंसधारी मात्र है। विस्थापित व्यक्ति (मुआवजा और पुनर्वास) अधिनियम के तहत संपत्ति के निपटान पर, नीलामी या अन्यथा, संरक्षक या परिसर के कब्जे वाले का आवंटन हस्तांतरिती का किरायेदार बन जाता

है। धारा 29 जो व्यक्तियों के वर्ग या संपत्ति के वर्ग को बेदखली से सुरक्षा देने के लिए अधिनियमित एक विशेष प्रावधान को धारा 29 के खंड (2) के तहत अधिसूचित किया जाना है। धारा 29 के तहत एक डीमिंग प्रावधान पेश किया गया है जिसके तहत ऐसा आवंटी अंतरिती का किरायेदार बन जाता है जो हस्तांतरण से ठीक पहले उसके पास था। धारा 29 इस प्रकार है:-

> "एस. 29 (1) जहां कोई भी व्यक्ति जिस पर इस धारा के प्रावधान लागू होते हैं, उसके पास उप-धारा (2) के तहत अधिसूचित वर्ग की किसी भी अचल संपत्ति का वैध कब्जा है, जिसे इस के प्रावधानों के तहत किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित किया जाता है तब, किसी भी अन्य अधिनियम व कानून में निहित किसी भी बात के बावजूद, ऐसा व्यक्ति, संपत्ति में उसके पास मौजूद किसी भी अन्य अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, किराए का या अन्यथा जिस पर उसने हस्तांतरण से ठीक पहले संपत्ति धारण की थी: भुगतान के समान नियमों और शर्तों पर अंतरिती का किरायेदार माना जाएगा।
>
> बशर्ते कि ऐसे किसी भी नियम और शर्तों में निहित किसी भी बात के बावजूद, ऐसा कोई भी व्यक्ति दो वर्ष से अधिक

की अवधि के दौरान संपत्ति से बेदखल होने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा, जो कि संपत्ति के उस वर्ग के संबंध में निर्धारित किया जा सकता है, निम्नलिखित में से किसी भी आधार पर छोड़कर , अर्थात्:- डी (ए) कि उसने स्थानांतरण की तारीख के बाद देय किराए की पूरी बकाया राशि का न तो भुगतान किया है और न ही उस तारीख के एक महीने के भीतर भुगतान किया है जिस दिन अंतरिती द्वारा उसे धारा में दिए गए तरीके से मांग का नोटिस दिया गया है। संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 106;

(बी) कि उसने लिखित रूप में हस्तांतरिती की सहमति प्राप्त किए बिना-

(i) संपूर्ण संपत्ति या उसके किसी भाग को उप-किराए पर देना या अन्यथा कब्जा से अलग करना, या

(ii) संपत्ति का उपयोग उद्देश्य के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए किया जिसके लिए वह हस्तांतरण से ठीक पहले इसका उपयोग कर रहा था,

(सी) कि उसने कोई ऐसा कार्य किया है जो संपत्ति के लिए विनाशकारी या स्थायी रूप से हानिकारक है।

(2) केंद्र सरकार, समय-समय पर, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, उन व्यक्तियों के वर्ग को निर्दिष्ट कर सकती है, जिन्हें, और कृषि भूमि के अलावा मुआवजे पूल में अचल संपत्ति का वर्ग, जिसके संबंध में, प्रावधान इस अनुभाग का लागू होगा और ऐसी किसी भी अधिसूचना को जारी करते समय केंद्र सरकार को निम्नलिखित मामलों का ध्यान रखना होगा, अर्थात्:

(ए) उस अवधि की लंबाई जिसके लिए ऐसे कोई भी व्यक्ति संपत्ति पर वैध कब्ज़े में रहे हैं।

(बी) वैकल्पिक आवास प्राप्त करने में कठिनाई; हस्तांतरिती के उपयोग के लिए;

(सी) किसी अन्य उपयुक्त आवासीय आवास की उपलब्धता

(डी) ऐसे अन्य मामले जो निर्धारित किए जा सकते हैं।"

धारा 29 की उप-धारा (1) के तहत, किसी भी अन्य कानून में निहित किसी भी बात के बावजूद किसी भी अचल संपत्ति पर वैध कब्जा रखने वाला व्यक्ति और किसी भी अन्य अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, जो उसके पास संपत्ति में हो सकता है, काल्पनिक रूप से किरायेदार बन जाता है। वह व्यक्ति जिसे संपत्ति किराए के भुगतान या अन्यथा उन्हीं

नियमों और शर्तों पर हस्तांतरित की जाती है जिस पर हस्तांतरण से ठीक पहले संपत्ति उसके पास थी। धारा 29(1) के तहत दी गई सुरक्षा पूर्ण नहीं है और प्रावधान के अनुसार दो साल की अवधि तक सीमित है। दो वर्ष की अवधि के दौरान भी ऐसे व्यक्ति को बेदखल किया जा सकता है यदि धारा 29(1) के खंड (ए), (बी) और (सी) में उल्लिखित आधार लागू हो। यह प्रश्न कि कोई आवंटी किरायेदार बनता है या नहीं, यह इस प्रश्न पर निर्भर करेगा कि क्या यह अधिनियम की धारा 29 के दायरे में आता है। अधिनियम की धारा 29(2) में प्रावधान है कि केंद्र सरकार समय-समय पर आधिकारिक राजपत्र में एक अधिसूचना द्वारा व्यक्तियों के वर्ग और कृषि भूमि के अलावा मुआवजे पूल में अचल संपत्ति के वर्ग को निर्दिष्ट कर सकती है। जिसके संबंध में, इस धारा के प्रावधान लागू होंगे और केंद्र सरकार ऐसी अधिसूचना जारी करते समय उप-धारा 2 के खंड (ए), (बी), (सी) और (डी) में उल्लिखित मामलों को ध्यान में रखेगी। धारा 29(2) के तहत दी गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए, केंद्र सरकार ने एक अधिसूचना एसआरओ 2219 जारी की। इस अधिसूचना के तहत, धारा 29 के प्रावधानों को निम्नलिखित वर्गों के व्यक्तियों पर लागू किया गया था:-

> "1. प्रत्येक व्यक्ति, जिसके विरूद्ध संपत्ति के हस्तांतरण की तिथि पर उसके वैध कब्जे में संपत्ति के संबंध में किराए का कोई बकाया नहीं है।

2. प्रत्येक व्यक्ति, जिसके विरुद्ध किराये का कोई बकाया हो एच उसके वैध कब्जे में संपत्ति की तारीख पर बकाया है संपत्ति का हस्तांतरण, लेकिन जिसने ऐसी तारीख के साठ दिनों के भीतर ऐसे बकाया का भुगतान किया है। 3. प्रत्येक विस्थापित व्यक्ति जिसके पास सत्यापित दावा है जिसके खिलाफ उसके वैध कब्जे में संपत्ति के संबंध में किराए का कोई बकाया संपत्ति के हस्तांतरण की तारीख पर बकाया है, लेकिन किराए का ऐसा बकाया उसे देय मुआवजे की राशि से अधिक नहीं है। 4. प्रत्येक विस्थापित व्यक्ति जिसके पास एक सत्यापित दावा है जिसके खिलाफ उसके कानूनी कब्जे में संपत्ति के संबंध में उसे देय मुआवजे की राशि से अधिक किराया बकाया है, जो संपत्ति के हस्तांतरण की तारीख पर बकाया है, लेकिन मुआवजे के समायोजन के बाद उसके खिलाफ इस तरह के बकाया का भुगतान ऐसे समायोजन की तारीख के साठ दिनों के भीतर किया जाता है।"

भगवान दास स्वीकृत रूप से विस्थापित व्यक्ति नहीं थे और इसलिए, अधिसूचना की श्रेणी 3 और 4 के तहत में शामिल नहीं थे। वह श्रेणी 1 और 2 के अंतर्गत भी नहीं आएगा क्योंकि माना जाता है कि उसने स्थानांतरण के 60 दिनों के भीतर बकाया किराए का भुगतान नहीं किया

था। यह इस तथ्य से स्पष्ट है अपीलकर्त्ता के पक्ष में विभाग ने संपत्ति के हस्तांतरण के बहुत वर्ष बाद वर्ष 1970 में डिमांड नोटिस एक्सटेंशन डी-6 जारी किया था और उत्तरदातओं को 08-08-1955 से यानी किरायेदारी की शुरूआत से लेकर 27-07-1961 तक किराये की बकाया राशि का भुगतान करना था।

प्रतिवादी के विद्वान वकील ने तब तर्क दिया कि प्रतिवादी या उसके पूर्ववर्ती हितधारक को अपीलकर्ता के पक्ष में संपत्ति के हस्तांतरण का नोटिस या ज्ञान नहीं था और इसलिए, वर्ष 1978 में प्रतिवादी द्वारा इस तथ्य का ज्ञान प्राप्त करने की तिथि से 60 दिनों की अवधि की गणना की जानी चाहिए।

इस तर्क को अधिसूचना के स्पष्ट प्रावधान के कारण स्वीकार नहीं किया जा सकता है जिसमें हस्तांतरण की तारीख के 60 दिनों के भीतर बकाया राशि का भुगतान करने की आवश्यकता होती है। प्रतिवादी के पूर्ववर्ती हित में भगवान दास को पता था कि संपत्ति बेचे जाने की संभावना है और इस वजह से, उन्होंने 1958 की रिट याचिका (सी) संख्या 438-डी दायर की, जिसमें विभाग को निर्देश देने के लिए एक आदेश की मांग की गई कि वह उसे सूट संपत्ति की बिक्री में भाग लेने की अनुमति दे। रिट याचिका को अनुमति दी गई और भगवान दास को सूट संपत्ति की बिक्री में भाग लेने की अनुमति दी गई जो या तो खुली नीलामी द्वारा या निविदाएं

आमंत्रित करके आयोजित की जानी थी। विभाग ने निविदाएं आमंत्रित करते हुए विभिन्न समाचार पत्रों में विज्ञापन जारी किया था। भगवान दास ने इस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। प्रत्यर्थी द्वारा यह दावा किया गया कि भगवान दास को संपत्ति की बिक्री के लिए निविदा आमंत्रित करने वाले विज्ञापन के बारे में पता नहीं चला था या कि उन्हें अपीलार्थी के पक्ष में संपत्ति की बिक्री के बारे में पता नहीं चला था, स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इस तथ्य का ज्ञान भगवान दास के लिए व्यक्तिगत होगा और यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि भगवान दास को अपीलार्थी के पक्ष में सूट संपत्ति की बिक्री के बारे में पता नहीं चला था। भगवान दास की मृत्यु वर्ष 1962 में हुई थी। 27.7.1961 पर बिक्री की तारीख से 60 दिनों के भीतर भुगतान करना आवश्यक था, यानी 27.09.1961 तक। चूँकि भगवान दास ने बिक्री की तारीख से 60 दिनों के भीतर किराए के भुगतान की शर्त को पूरा नहीं किया, इसलिए वे अपीलार्थी के किरायेदार नहीं बने। उत्तरदाता भगवान दास के हित में उत्तराधिकारी होने के नाते भगवान दास के पास जो कुछ भी होगा उसे विरासत में प्राप्त करेगा। चूँकि भगवान दास अपीलार्थी के किरायेदार नहीं बने थे, इसलिए भगवान दास के हित में उत्तराधिकारी होने के नाते प्रत्यर्थी भी अपीलार्थी के किरायेदार नहीं बनेंगे।

ऊपर बताए गए कारणों से, अपील स्वीकार की जाती है। उच्च न्यायालय द्वारा पारित डिक्री और निर्णय को दरकिनार कर दिया जाता है और निचली अदालत की डिक्री को बहाल कर दिया जाता है। लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।

एन.जे. अपील की अनुमति दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी सोनल पारिख (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सिमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।